रजि. नं. पी.बी./जे.एल–/0011/2012-14 RNI No. 26281/74

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

वर्ष–71, अंक : 13, 26/29 जून 2014 तदनुसार 15 आषाढ़ सम्वत् 2071 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

यज्ञकर्त्ता का नाश नहीं

–ले० स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात।
यज्ञैर्य इन्द्र दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः।।

शब्दार्थ– **नू+चित्**= क्या कभी **सः**= वह **जनः**= मनुष्य **भ्रेषते**= भ्रष्ट होता है, हानि उठाता है? **न**= नहीं **रेषत्**= हिंसित होता, **यः** =जो **अस्य**= इसके **मनः**= मन्तव्य को **घोरम्**= कष्ट क्लेश सह कर भी **आ+विवासात्** = पालन करता है। **यः**= जो मनुष्य **यज्ञैः**= यज्ञों के द्वारा **इन्द्रे**= परमात्मा में **दुवांसि**= पूजाओं को **दधते**=अर्पण करता है, **सः** = वह **ऋतपाः** = ऋतरक्षक **ऋतेजाः**= ऋतपुत्र= धर्म पुत्र **रायः**= धनों को **क्षयत्**= बसाता है।

व्याख्या– जब कोई भगवान के मार्ग पर चलने लगता है, तो संसारी जन उसे डराते हैं, कहते हैं खाओ, पियो, आनन्द करो। प्रत्यक्ष को छोड़ कर क्यों अप्रत्यक्ष–परोक्ष के पीछे भागते हों, क्यों अपनी जवानी का नाश करते हो? अहो! भोग विलास, विषय वासना में यौवन नष्ट नहीं होता।

पूर्वार्ध का एक अर्थ और भी है–सचमुच वह मनुष्य नष्ट हो जाता है जो मन को डुलाता हुआ इस संसार के घोर (भयंकर दुखदायी) विषय–समूह का सेवन करता है। विषय तो विष है, विषैले सर्प हैं। काले सर्प से डसा कोई नहीं बचता। विषय में तो धन जाए, मान जाए और छोड़ जाए स्वजन। वेद बहुत मार्मिक शब्दों में कहता है–

पिता माता भ्रातरं एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम।।
–ऋ. 10/34/4

बाप, मां, भाई कहते हैं, हम इसे नहीं जानते, बेशक इसे बांध कर ले जाओ। सब सम्बन्धी पराए बन जाते हैं, व्यसनी का कोई अपना नहीं बनता।

वेद कहता है–

ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽ न्येषामस्तमुप नक्तमेति।।
–ऋ. 10/34/10

ऋण की कामना वाला डरता है, ऋण की चाह है, डर का मारा रात को दूसरे के घर में जाता है।

व्यसनी घोर व्यसनों में पड़ कर सम्पत्ति नष्ट कर बैठता है। अब ऋण लेने लगा है। कुछ दिन तक सुविधा से ऋण मिलता रहता है। ऋण वह वापस नहीं करता। ऋणदाता तंग करता है, ऋणी डर कर अपने घर नहीं आता। कितनी दुर्दशा है? इस विपत्ति से बचने के लिये वेद कहता है–

मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु। **–ऋ. 10/34/14**

धृष्टता करके, ढिठाई को सामने रख कर घोर आचरण मत करो। बुराई के मार्ग में ढीठ लोग ही जाते हैं। व्यसनों से धन नाश बता कर धनरक्षा का सच्चा वास्तविक उपाय भी वेद बताता है–

यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवासि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ।।

जो यज्ञों द्वारा भगवान की सेवा–पूजा करता है, वह ऋतरक्षक=धनरक्षक ऋतेजा=ऋतुपुत्र=धर्मपुत्र धनों को बसाता है।

धन चंचल है। आज एक के पास है, कल दूसरे के पास भागते रहना, स्थान बदलते रहना, धन का स्वभाव सा है किन्तु जो दान में लगाता है, उसके पास बस जाता है। जो इसे रखना चाहे, उसके पास रहता नहीं। जो इसे दूर करे,उसके पास भागा आता है। कैसी विचित्रता है।

सागर सूर्य को जल देता है। सूर्य उसे सभी जगह बरसाता है, किन्तु सभी स्थानों का जल दौड़ कर अन्त में सागर में जाता है। जो सागर में नहीं जाता, वह या तो सड़ांद पैदा करता है या सूख जाता है। यही दशा धन सम्पत्ति की है, दे डालो तो निश्चिन्ता। संभाल कर रखो, चोर–चकार, राजा का भय।

दान को वेद की परिभाषा में यज्ञ कहते हैं। सब धन भगवान का है। उसी ने सब को दिया है, जो इस तत्व को समझ कर **त्वदीयं वस्तु सर्वात्मन् तुभ्यमेव समर्पये** (तेरी वस्तु प्रभो! तुझे ही अर्पण करता हूं) की भावना से भगवान के निमित्त दे डालते हैं, वे सचमुच यज्ञ करते हैं।

यज्ञ में द्रव्य डालते हैं। उससे वृष्टि होती है, वृष्टि से धनधान्य होता है, वह फिर याज्ञिक के पास आता है और हुत द्रव्य से अधिक मात्रा में आता है, अतः धन का सच्चा उपयोग, धन का सच्चा बचाव यज्ञ में हैं, किन्तु यज्ञ के स्वरूप को समझ लो। ऋग्वेद 7/21/2 में यज्ञानुष्ठान का फल बताया है, उससे यज्ञ का स्वरूप थोड़ा सा समझा जा सकता है, अतः उस मंत्र को यहां उद्धृत करते हैं–

प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः।
न्यु ध्रियन्ते यशसो गृभादा दूरऽपब्दो वृषणो नृषाचः।।

जो लोग उत्तमता से यज्ञानुष्ठान करते हैं, वे हृदयाकाश में विशेषरूप से पहुंचते हैं, सोमरस से सदा मदमाते रह कर विदथे= शास्त्रसंग्राम में वे धर्षक वाणीवाले होते हैं। (अर्थात उनके आगे सब की बोलती बंद हो जाती है), वे सचमुच कीर्ति के घर से लाए जाते हैं। उनकी वाणी दूर तक जाती है। वे सुखवर्षक तथा लोक संग्राहक होते हैं।

यज्ञानुष्ठान करने वालों की प्रत्यभिज्ञान= पहचान इस मंत्र में बताई गई है–1. वे हृदयाकाश में विशेष रूप से पहुंचते हैं, अर्थात वे विवेकी, विचारी तथा धारणा–ध्यान के धनी होते हैं, 2. इस कारण वे शान्तिरस से सदा मस्त रहते हैं, योगी से अधिक शांति किस को मिल सकती है? 3. और इसी कारण उनकी वाणी में बड़ी शक्ति रहती है, उनकी वाणी से सभी को दबना पड़ता है, मौन होना पड़ता है, 4. और इसी से उनकी महती कीर्ति होती है, मानो वे साक्षात् कीर्तिगृह से लाए जाते हैं, 5. उनकी वाणी दूर तक जाती है, अर्थात् उनके उपदेश–आदेश का प्रभाव दूर तक पहुंचता है, 6. वे महाबली होते हैं तथा सब पर सुख की वृष्टि करते हैं और 7 इन गुणों से नृषाच=जनसाधारण से मिलते–जुलते हैं और सब को अपना सहायक, सहयोगी, सहकारी बना लेते हैं, अर्थात यज्ञ का अर्थ हुआ लोक–संग्रह, लोक विग्रह यज्ञ नहीं हो सकता।

–स्वाध्याय संदोह से साभार

तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्त

-ले० श्री सुरेश शास्त्री सभा कार्यालय जालन्धर

हमारा मन एक अद्‌भुत तथा विलक्षण शक्ति का केन्द्र है। मन की शक्ति के बिना शारीरिक शक्ति किसी ठोस तथा भारी कार्य का अवसर उपस्थित होकर हतोत्साह होकर बैठ जाती है। मन की शक्ति के द्वारा मनुष्य उत्साह से पूर्ण होकर कार्य करता है और सफलता को प्राप्त करता है। अतः गीता में कहा गया है-

मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

मानव के बन्धन या मुक्ति की भावना सर्वथा मन पर ही आश्रित होती है। इधर वेद भी पुकार-पुकार कर कह रहा है-**तन्मे मनः शिवंसकल्पमस्तु।** हे भगवन्, मेरे मन के संकल्प सदा ही मंगलमय तथा शुभ रूप हों। संस्कृत साहित्य के हर्षचरित में महाराज हर्षवर्धन कहते हैं विजेता वही हो सकता है जो समुद्र को नदी , नदी को नहर तथा हिमालय को एक छोटी सी पर्वत श्रेणी की तरह सुगम तथा लंघनीय समझे। कबीर जी कहते हैं-

मन के हारे हार है मन के जीते जीत अर्थात् मनुष्य की हार और जीत मन के कारण तय होती है। मन के द्वारा मनुष्य सफलता की बुलन्दियों को छू सकता है तो उसी प्रकार मन की दुर्बलता के कारण पतन की ओर अग्रसर होता है। मनुष्य अपने दृढ़ संकल्पों के द्वारा मृत्यु पर भी विजय पा सकता है।

आयुर्वेद के महान् ज्ञाता चरक दो प्रकार की व्याधि मानते हैं, शारीरिक तथा मानसिक-

द्विविधो जायते व्याधिः शारीरो मानसस्तथा।।

मिथ्या आहार विहार से जिस प्रकार शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार विविध मानसिक कारणों से मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं। दुर्बल मन के रोगी छोटी सी शल्य क्रिया में ही अधीर हो बैठते हैं। प्राकृतिक दुर्बलता के अतिरिक्त आजकल की तीव्रगति सापेक्ष यात्राओं में विविध प्रकार की दुर्घटनाओं से तथा अन्य नशीले मादक पदार्थों के सेवन से भी विविध प्रकार की मानसिक दुर्बलताएं उत्पन्न हो जाती हैं, जिससे बलवान् वात-तन्तु भी धीरे-धीरे दुर्बल हो जाते हैं। ये असावधानियां तथा व्यसन मन को दुर्बल करके तरह-तरह के मानसिक रोग उत्पन्न कर देते हैं। वियोग, शोक, चिन्ता, क्षोभ, कलह, वैमनस्य, अतिपरिश्रम, दीर्घकालीन महारोग, असफलता, धन-हानि, आदि से भी मन रूग्ण हो जाता है।

प्रकृति के विचार से मन मुख्य रूपेण तीन प्रकार का माना गया है, सत्व-प्रधान, रजःप्रधान, तमः-प्रधान। यह सर्वथा सत्य है कि प्रत्येक मन युग-युगान्तरों से संस्कार लेकर संसार में आता है। सत्वगुण प्रधान मन जितात्मा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान, ईर्ष्या से शून्य, स्वाध्यायशील, कर्त्तव्यपरायण, उच्चविचार, उच्च लक्ष्य, तथा उच्च संकल्पों की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहता है। रजःप्रधान मन उच्च लक्ष्य का इच्छुक परन्तु स्वार्थपर, कामादि की प्रेरणा से कभी-कभी विचलित होने वाला, स्वार्थ-वृत्ति तथा ऐश्वर्यभोगी होता है। परन्तु तामस मन अत्यन्त स्वार्थ साधक, नीच वृत्ति, नीच कर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य भावना से सर्वथा शून्य तथा प्रत्येक कार्य में सर्वथा स्वार्थी होता है।

मन के थोड़े अंश में विकृत हो जाने पर मानव सर्वथा पथ भ्रष्ट हो जाता है। कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य में भेद नहीं समझ सकता। अधिक विकृत हो जाने पर रोगी का जीवन ही भारभूत बन जाता है। वह स्वयं कभी-कभी इतना उद्विग्न हो जाता है कि वह संसार में बन्धु-बान्धवों से, इष्ट मित्रों से तथा उनके सम्पर्क में आने वाले सभी सज्जनों से निज सम्बन्ध तोड़कर सर्वथा एकाकी होकर संसार से मानो रूठ कर बैठ जाता है। कभी कभी वह एकान्तप्रिय बन जाता है और कभी-कभी अपने जीवन को अन्धकारमय समझ कर आत्महत्या का विचार भी करने लगता है। देखिए मन की दुर्बलता मनुष्य को कहां से कहां ले जाती है।

मनुष्य के पास सभी प्रकार के सुख के साधनों के होने पर भी मन की विकृति के कारण सदा ही अप्रसन्न, असन्तुष्ट, तथा अशान्त होकर भटकता रहता है। मन की विकृति मानव की चेष्टाओं में भी विचित्र परिवर्तन कर देती है। कुछ विचारक सत्त्व अर्थात् धैर्य को मन का गुण मानकर मन को मुख्यतः तीन प्रकारों में विभक्त करते हैं, प्रवरसत्त्व, मध्यम सत्त्व तथा हीन सत्त्व। प्रवरसत्त्व वे हैं जो संपत्ति तथा विपत्ति को एक समान समझते हैं। न वे संपत्ति में परम उद्धत तथा अतिगर्वित हो उठते हैं और न विपत्ति में दीन-हीन होते हैं। हीन सत्त्व संपत्ति में तो आकाश पाताल एक कर देते हैं और अभिमान में आकर दूसरों का निरादर कर देते हैं परन्तु जरा सी विपत्ति आने पर दुखी हो उठते हैं और आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाते हैं।

भारतीय चिकित्सक शिरोमणि चरक जिनके विषय में बहुत से पाश्चात्य वैज्ञानिक कहते हैं कि इन जैसा प्रयोगवादी चिकित्सक संसार भर में नहीं हुआ है, वे लिखते हैं कि काम, क्रोध, मोह, ईर्ष्या, मान शोक, चिन्ता, उद्वेग, भय, हर्ष ये मनोविकार हैं, जो व्यक्ति इनको जीत ले, वह मृत्यु को भी जीत सकता है। मन की दुर्बलता के कारण व्यक्ति इन विकारों से ग्रसित होता है। अभ्यास के द्वारा ही मनुष्य इन विकारों पर नियन्त्रण कर सकता है। गीता में भी श्रीकृष्ण जी कहते हैं कि-

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

अर्थात् लगातार अभ्यास करने से तथा वैराग्य की भावनाओं द्वारा इस मन को संसारिक बन्धनों से मुक्त करके अपने वश में किया जा सकता है। अभ्यास तथा वैराग्य की अतुल शक्ति का अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है। संक्षेप में मन की दुर्बलता से बचने के लिए मनरूपी घोड़ों को अदम्य आत्मशक्ति द्वारा पूरे नियन्त्रण में रखो। इस मनरूपी घोड़े का दमन बड़ी भारी आध्यात्मिक विजय है। मन को नियन्त्रण में रखने से मनुष्य अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रख सकता है। मन की दुर्बलता के कारण ही इन्द्रियां विषयों की ओर उन्मुख होती हैं। शिवसंकल्प सूक्त के छः मन्त्रों में मन के इसी स्वरूप का वर्णन किया गया है कि जो मन जागते हुए दूर-दूर तक जाता है वहीं मन सोते हुए भी कल्पना के सागर में खो जाता है। प्रकाश से भी अधिक गतिशील इस मन को मनुष्य अपने विवेक से तथा दृढ़ संकल्पों से वश में कर सकता है। जिस मन के द्वारा सत्कर्मनिष्ठ ध्यान करने वाले बुद्धिमान लोग इष्टकर्मों को करते हैं, जो बुद्धि का उत्पादक और स्मृति का साधन, धैर्यस्वरूप है और मनुष्यों के भीतर नाशरहित प्रकाशस्वरूप है, जिसके बिना कोई भी कर्म नहीं किया जाता, इस प्रकार के मन को मनुष्य वैसे वश में कर सकता है जैसे अच्छा सारथि घोड़ों को लगाम के द्वारा इधर-उधर ले जाता है। मनुष्य को अपने जीवन को श्रेष्ठ बनाने के लिए मन की साधना करना अत्यन्त आवश्यक है। जो मनुष्य अपने मन को जीत लेता है, मन के ऊपर अपना अधिकार कर लेता है वह संसार में कठिन से कठिन परिस्थितियों का भी समाधान निकाल लेता है और जिस मनुष्य का अपने मन के ऊपर अधिकार नहीं होता वह विपत्तियों के आने पर घबरा जाता है और मन की दुर्बलता के कारण आत्महत्या करने के लिए तैयार हो जाता है। इसलिए हमें इन शिवसंकल्प सूक्त के मन्त्रों का सोते समय पाठ करना चाहिए जिससे इस मन में कभी भी सोते हुए, जागते हुए कुविचार न आएं और हम शुभ संकल्पों को धारण करते हुए निरन्तर उन्नति के पथ पर अग्रसर रहें।

सम्पादकीय.....

नैतिकता और उसका मूल्यांकन

जब हम मानव निर्माण की चर्चा करते हैं तो हमारे मन में यह भाव होता है कि हम पशुत्व से मनुष्यत्व की ओर बढ़े। पशु और मानव दोनों ही एक समान प्राणधारियों के अन्तर्गत आते हैं, दोनों की मौलिक आवश्यकताएं प्राय: एक समान ही हैं। आहार, निद्रा, भय, मैथुन में सब प्रवृत्तियां पशुओं और मनुष्यों में एक समान पाई जाती है परन्तु फिर भी दोनों में अन्तर है। पशुओं का जीवन प्राकृतिक है, इसके विपरीत मानव जीवन सांस्कृतिक है। मानव में कला विज्ञान और दर्शन का नित्य संवर्धन दिखाई पड़ता है। मानव ने प्रकृति की कठिनाईयों पर विजय प्राप्त करके अपने जीवन को आधिभौतिक दृष्टि से बड़ा समृद्ध बना लिया है। उसने प्राकृतिक संविधानों का परिष्कार कर के अपने भोजन वस्त्र और मकान को बड़ा सुन्दर, सुदृढ़ और कलात्मक बना लिया है। इसी आधिभौतिक समृद्धि को प्राय: संस्कृति शब्द से पुकारते हैं, सांस्कृतिक जीवन में कुछ तत्त्व प्राकृतिक जीवन से बाहर के भी हैं। इन तत्त्वों को नैतिक अथवा आध्यात्मिक तत्त्व कहते हैं। नैतिक जीवन के मूल में बुद्धि तत्व आवश्यक है।

नीति अथवा नैतिकता का अर्थ कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य के सम्बन्ध में निश्चय करना है। नीति और राजनीति दोनों का विषय वास्तविक कल्याण है। नीति के आदेश उपदेश या सुझाव के रूप में होते हैं और राजनीति का आदेश आज्ञा होता है। धर्म और नीति का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब मनुष्य अपने कर्त्तव्य को ईश्वरीय आज्ञा के रूप में देखता है तो उसके लिए नीति धर्म बन जाती है। नीति, नैतिकता, शिष्टाचार, सदाचार, आचार, शील चरित्र पर्यायवाची शब्द हैं। राजनियम हमारे कर्मों तक पहुंचते हैं भावनाओं तक नहीं। यह त्रुटि धर्म पूरी करता है। धर्म का उद्देश्य भावनाओं को पवित्र करना है। नीति का क्षेत्र राष्ट्र के क्षेत्र तक सीमित नहीं। राष्ट्र कहता है दूसरे का माल मत छीनो। परन्तु नीति इससे आगे बढ़कर कहती है कि दान भी करो। नीति कोई निश्चित मर्यादा नहीं है, प्रत्येक मनुष्य को बुद्धि की सहायता से हर स्थिति में निश्चय करना चाहिए। मनुष्यों के आदर्शों के दो अंश हैं अपनी आत्मोन्नति और दूसरों का सुख।

नीति की नींव अनुभव पर आधारित होती है। हमें नैतिकता को भी परखना है और देखना है कि इसका मूल्य क्या है? नैतिकता का समाज के लिए क्या उपयोग है? भारतीय दृष्टिकोण से अष्टांग योग में वर्णित पांच यम नैतिक मूल्य हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पांच नैतिक मूल्य हैं। अहिंसा को हमने नैतिक मूल्य स्वीकार किया है। हम चाहते हैं कि हमें कोई न मारे, यदि यह ठीक है तो मुझे भी किसी को नहीं मारना चाहिए। अत: यह नैतिक मूल्य स्वीकार किया गया है कि कोई भी किसी को नहीं मारेगा। इसी प्रकार सत्य नैतिक मूल्य है। हमारी संस्कृति में मनुष्य को शिक्षा समाप्ति पर गुरू के द्वारा उपदेश दिया जाता था कि सत्यं वद धर्मं चर अर्थात् सत्य बोलो और धर्म का आचरण करो। कठिन से कठिन परिस्थितियों में मनुष्य को सत्य और धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए। मनुष्य को हमेशा सत्य बोलने का नियम बना लेना चाहिए। अस्तेय अर्थात् चोरी न करना भी नैतिक मूल्य है। चोर यद्यपि स्वयं चोरी करता है परन्तु यह नहीं चाहता कि उसका धन चुराया जाए। ब्रह्मचर्य का अर्थ संयम है। मनुष्य को अपनी इन्द्रियों को अपने वश में रखना भी ब्रह्मचर्य कहा गया है। अपरिग्रह अर्थात् संचय न करना। यदि हम स्वयं जीना चाहते हैं और भोग भोगना चाहते हैं तो हमें हर ओर से इकट्ठा करने की प्रवृत्ति को त्याग देना चाहिए और मिल बाँट कर खाना चाहिए। इस प्रकार इन नैतिक मूल्यों के धारण करने से मनुष्य को जीने का ढंग आता है। नैतिक मूल्य कोरे आदर्श ही नहीं हैं अपितु समाज को चलाने के लिए बनाए गए नियम हैं।

प्रकृति में नैतिकता का कोई विशेष नियम नहीं है। प्रकृति का एक प्रमुख नियम है कि सक्षम ही जीवित रह पाएगा। निर्बल स्वयमेव ही समाप्त हो जाएंगे। ऐसी कहावतें प्रसिद्ध हैं कि बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है, जिसकी लाठी उसकी भैंस इत्यादि। ये कहावतें प्रकृति के क्षेत्र में तो बिल्कुल ठीक उतरती हैं। प्रकृति तो पशु पक्षी, मनुष्य, आततायी, सबको एक समान वायु, जल प्रकाश उपलब्ध कराती है। पापी और पुण्यात्मा दोनों समृद्ध भी होते हैं, रोगग्रस्त भी होते हैं और अन्त में कालवश भी हो जाते हैं। इन बातों से कई बार सज्जन मनुष्य क्षुब्ध हो उठते हैं कि संसार में सज्जनता में क्या मिलता है, पापी ही सुख पाते हैं। इस प्रकार के लोग प्राय: संतोष वाले, निष्क्रिय और समुद्र किनारे बैठने वाले होते हैं। उनमें इतना साहस नहीं होता कि गोता मार कर मोती निकालें। क्रियाशीलता और साहस नैतिकता के लक्षण हैं इन गुणों से रहित होकर मनुष्य अपने आपको नैतिक नहीं कह सकते। यदि मान भी लिया जाए कि किसी सज्जन को नैतिक होने पर भी उसका पुरस्कार नहीं मिला तो यह उपालम्भ ठीक नहीं क्योंकि नैतिक पुरूष तो नेकी कर कुएं में ड़ाल के सिद्धान्त को मानकर निष्काम कर्म करता है और पुरस्कार की आशा नहीं रखता।

कई लोगों का विचार है कि नैतिकता मुख्य रूप से एक व्यक्तिगत गुण है। इसका सामाजिक अथवा राष्ट्रीय स्तर पर कोई महत्त्व नहीं है। क्या आज का व्यापारी वर्ग खाद्य वस्तुओं में मिलावट करके, रिश्वतखोरी और सत्ता का दुरूपयोग करके देश को रसातल की ओर नहीं ले जा रहे हैं? क्या राष्ट्र स्तरीय भ्रष्टाचार देश को खोखला नहीं कर रहा है? कई लोगों का मत है कि शक्तिशाली ही वस्तुत: बलवान होता है नैतिकता में क्या रखा है। यह स्पष्ट है कि पशुओं में शारीरिक बल का महत्त्व है परन्तु मानव में शारीरिक बल के साथ नैतिक बल दोनों का महत्त्व है। यह समझ लेना चाहिए कि शक्ति और नैतिकता दोनों एक दूसरे के पूरक है। अत: कोरी नैतिकता और शारीरिक बल दोनों ही एक दूसरे के सहयोग बिना सफलता देने वाले नहीं हैं। जो नैतिकता को छोड़कर केवल शारीरिक बल को महत्त्व देते हैं उनमें और पशुओं में कोई अन्तर नहीं है। मनुष्य अपने नैतिक मूल्यों के कारण ही मनुष्यत्व को प्राप्त करता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि नैतिक मूल्यों के बिना राष्ट्र की उन्नति सम्भव नहीं है। आज अनैतिकता के कारण समाज में अनेक प्रकार की बुराईयां फैल रही हैं। इसलिए हम अपने राष्ट्र की उन्नति चाहते हैं तो हमें नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में अपनाना पड़ेगा।

-प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

मनुष्य को कर्त्तव्यनिष्ठ होना चाहिए

-ले० डा. रविदत्त शर्मा एम.ए. (वेद) आर्य समाज शामली

'इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तं न स्वप्नाय स्पृहयन्ति' 'दिव्य गुण-कर्म-स्वभाव वाले विद्वान् कार्यरत मनुष्य को चाहते हैं, सोने वाले आलसी को नहीं।' वेद में ऐसे व्यक्ति की प्रशंसा की गयी है जो निरन्तर कर्मशील है। वेद की आज्ञा है कि जागते रहो। मानवजाति को सावधान किया गया है कि निद्रा-आलस्य-प्रमाद उसे निष्कर्मा न बना दें। मनुष्य को कर्त्तव्यनिष्ठ होना चाहिये। उत्तम गुणों से युक्त मनुष्य को सोम कहा है, सोम का अर्थ सौम्य होता है ; ऐसा व्यक्ति जिसमें कोई दोष नहीं रह गया है। सोम का अर्थ आनन्द भी है और आनन्दमग्न वही हो सकता है जो समस्त दुरितों से दूर है। यदि हम अपने कर्त्तव्यों के प्रति जागरूक हैं तो हमारी चित्तवृत्ति स्खलित नहीं होगी अर्थात् उसमें स्थिरता होगी। कर्त्तव्य व्यक्ति को योगी बनाता है। कर्मयोगी ही सोम होता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में प्रसाद (लापरवाही) के लिये स्थान नहीं होता। वैदिक युक्तियों में विभिन्न प्रकार के जागने की बात कही गयी है-

'सोम व्रतेषु जागृहि'

ऋ० ८.६१.२४

'अनिन्यो वृजने सोम जागृहि'

ऋ० ६.८२.४

'त्वं नः सोम सुक्रतुर्वयोधेयाय जागृहि।' ऋ० १०.२५.८

'सं त्वा शिशामि जगृह्यदव्यं विप्र मन्मभिः।'

ऋ० १०. ८७.२४

'हे सौम्य अपने व्रतों में, नियमों में सदैव जागरूक रहो।'

'हे अनिन्द्य (निर्दोष) अपने लक्ष्य के प्रति सावधान रहो।'

'हे उत्तम कर्म करने वाले सौम्य पुरुष आयु तथा अन्न-बल आदि को धारण करने के सम्बन्ध में सावधान रहो।'

'कभी न परास्त होने वाले हे विप्र ! स्तुतियों से मैं तुम्हारी स्तुति तथा प्रार्थना करता हूँ-जागते रहो, सावधान हो जाओ।'

सामान्य रूप से जीवन में भूल-चूक होती रहती है परन्तु वेद इसके लिये स्वीकृति प्रदान नहीं करता ; असावधानी सर्वथा त्याज्य है। इस उपदेश का उद्देश्य है कि मानव स्वभाव में अनायास कोई विकृति न आ जाय। एक कमजोरी होने पर बहुत-सी बीमारियाँ दौड़ती हैं; सावधानी इसलिये कि प्रगति के बाधक किसी भी दूषण का जीवन में समावेश न हो सके-

प्रतिचक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम्।

रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः।। ऋ० ७.१०४.२५

मन्त्र में इन्द्र तथा सोम से प्रार्थना की गयी है कि वे मनुष्यों को जागरूकता का उपदेश करते रहें जिससे कि सब अपने कर्त्तव्यों के प्रति सावधान रहें। राक्षसों का संहार करें और दण्डनीय दुष्टों पर व्रजप्रहार करें, उन पर शस्त्र प्रयोग करें। साधन सम्पन्न को इन्द्र कहते हैं ; ऐसे व्यक्तियों को विशेष रूप से सावधान रहना चाहिये, कहीं ऐश्वर्य के मद में विलासी न बन जाएँ। असावधानी के कारण दुष्टों का अधिकार न हो जाए और बुरी प्रवृत्तियाँ अपना प्रभाव न जमा लें। बुरों का और बुराईयों का प्रतिकार करने की क्षमता होनी चाहिये।

असावधानी के कारण ही आपत्ति का आगमन होता है। भारतवर्ष के निवासी असावधान थे तो सभी ने इन्हें अपना दास बनाया और जब इनमें चेतना आयी तो विदेशियों को खदेड़ दिया। आज भी मनुष्य प्रमादी है ; उसे यह पता नहीं कि वह कितना गिर चुका है। आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार से वह पराधीन हो चुका है। हमारे देश के नागिरक कुछ धन के लोभ के वशीभूत होकर यहाँ विनाशलीला रच रहे हैं और जानबूझ कर इस देश के टुकड़े-टुकड़े करके दूसरों के हवाले कर देना चाहते हैं। अपराध को अपना जन्मसिद्ध अधिकार मान बैठे हैं। एक व्यक्ति बहुत अच्छी स्थिति में बैठा हुआ है परन्तु उसके चारों तरफ दुष्टों का जाल बिछा हुआ है तो वह अकेला उद्यमी सावधान भी हो तो क्या करेगा ? राष्ट्राध्यक्ष कितने ही सचेत रहें; यदि वे नागरिकों को सावधानी नहीं सिखा सकते तो वे राष्ट्र के प्रबन्ध में कदापि सफल नहीं हो पायेंगे। वेद का उपदेश है कि स्वयं जागो और दूसरों को जगाओ। देश की जनता देश के प्रति सावधान नहीं है तो देश सुरक्षित नहीं रहेगा। सावधानी सर्वत्र अपेक्षित है, चाहे घर हो या देश। घर का स्वामी घर के प्रति उपेक्षा बरतने लगे तो घर ठीक प्रकार से नहीं चलेगा, वैसे राष्ट्रोन्नायक यदि उदासीन हो जाय तो राष्ट्र आपत्ति में फँस जायेगा। साधन चाहे जितने हों, उनके उपयोग के लिये सावधानी की आवश्यकता है। 'रयिं जागृवांसो अनुग्मन' धन-दौलत आदि ऐश्वर्य जागने वाले को प्राप्त होते हैं। विश्व की उपलब्धियाँ जागने वाले के लिये होती हैं-

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति।

ऋ० ५.४४.१४

'जो जागता है ऋचाएँ उसकी कामना करती हैं, साम उसे ही प्राप्त होते हैं, सोम उसका मित्र बन जाता है' ऋचा का अभिप्राय है अर्चना-स्तुति आदि। स्तुति उसकी सफल होती है जो सावधान है, साम अर्थात् उपासना का पात्र भी वही है। सोम = आनन्द भी कर्त्तव्यनिष्ठ व्यक्ति को ही मिलता है बिना कर्त्तव्य को पूर्ण किये आनन्द असम्भव है। उक्त मन्त्र में स्पष्ट किया गया है कि निष्क्रिय जीवन में कोई उपलब्धि नहीं होती। साधनारत व्यक्ति को ही स्तुति प्रार्थना-उपासना-वेदपाठ-कर्मकाण्ड आदि लाभ पहुँचाते हैं। व्यर्थ के प्रदर्शन से कुछ नहीं मिलता। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य अज्ञानवश कर्त्तव्य को छोड़कर अकर्त्तव्य अर्थात् जो उसे नहीं करना चाहिये वही करने लगता है। इस प्रकार का कार्य विपरीत फलवाला होता है। कर्त्तव्य का चयन-निर्धारण एवं पारायणपूर्ण सचेत होकर करना चाहिये। सबसे बड़ा उदाहरण यह है कि हमारे देश का प्रत्येक व्यक्ति कठोर परिश्रम कर रहा है परन्तु देश दिनोंदिन पतन की ओर जा रहा है। इससे पता चलता है कि कोई भी सही ढंग से काम नहीं कर रहा है। ऐसा कदापि सम्भव नहीं कि जिस देश में नागरिक जी तोड़कर मेहनत करें और देश रसातल को चला जाय। इसीलिये मन्त्र में कहा गया है कि लापरवाही की स्थिति में वेद पढ़ने से भी सफलता नहीं मिलती। जो भी कार्य किया जाय, सावधानी अपेक्षित है। व्यर्थ की टालमटोल से समय नष्ट होता है-

त्रातारो देवा अधिवोचतोता नो मा नो निद्रा ईशत मौत जल्पिः।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमावदेम।।

ऋ० ८. ४८. १४

'हे रक्षक विद्वानों हमें अधिकृत रूप से उपदेश दो। आलस्य हम पर शासन न करे और व्यर्थ की बकवास भी हमें न घेरे। सम्पूर्ण दुर्गुणों के नाशक ! हम सोम के प्रिय बनें। उत्तम वीर तथा श्रेष्ठ प्रजा (सन्तान) वाले होकर सत्योपदेश करते रहें, सत्य ही बोलें।'

उक्त मन्त्र में आलस्य तथा अनर्गल वार्तालाप को छोड़ने का उपदेश किया गया है। व्यर्थ बोलते रहने से समय नष्ट होता है। बकवादी के लिये समय का कुछ भी मूल्य नहीं होता। विशेष बात यह है कि आलसी तो अपना ही समय नष्ट करता है परन्तु बकवादी जिससे बातें करता है उसको ले बैठता है अर्थात् दोहरा नुकसान करता है। ऐसे व्यक्ति से बचना ही श्रेयस्कर है। कर्मठ व्यक्ति को इतना समय कहाँ कि वह व्यर्थ की बातों में लगा रहे। वेद के अनुसार व्यर्थ बोलना हानिकार है। इस प्रकार के व्यसनों से बचने के लिये एक ही उपाय है कि काम में लगे रहो। यह भी सम्भव है कि काम करते-करते थकान हो जाय और काम में मन न लगे तो फिर सबकी रक्षा की कामना करने वाले विद्वानों के सम्पर्क में जाना, उनसे उपदेश ग्रहण करना श्रेयस्कर होगा। विद्वान् के साथ जितना समय बीतेगा, कर्त्तव्य की शिक्षा मिलेगी। वही व्यक्ति खाली होता है जिसे अपने कर्त्तव्य का पता नहीं होता। ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के लिये प्रार्थना भी करनी चाहिये। ईश्वर की कृपा से हम सब सदैव कर्त्तव्यपथ पर चलते रहें और एक पल के लिये भी असावधानी न आये।

सांसारिक पदार्थों के अतिरिक्त यदि हमें परमात्मा का साक्षात्कार करना हो तो जागरणशील होना आवश्यक है।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

महर्षि के पूना प्रवचनों का संक्षिप्त परिचय

-ले० खुशहाल चन्द आर्य, गोविन्द राम आर्य एण्ड सन्स, 180 महात्मा गांधी रोड, कोलकत्ता

महर्षि दयानन्द ने पूना में 15 प्रवचन दिये थे जिनमें बुहत ही सारगर्भित बातें बताई थीं। उन प्रवचनों को हर व्यक्ति के लिए अति उपयोगी समझ कर मैंने यह लेख लिखा है। इन प्रवचनों को पढ़कर मेरी भी कई शंकाओं का समाधान हुआ है। मेरा पूरा परिवार पुनर्विवाह के पक्ष में है। मेरे स्व. पूज्य पिता गोविन्द राम आर्य (प्रधान जी) ने अपने जीवन में 10-12 बाल विधवाओं का विवाह, अच्छे योग्य विधुर या कुंवारे युवकों से पुनर्विवाह करवाकर उनको नारकीय जीवन से निकाल कर स्वर्गीय जीवन प्रदान किया। साथ ही अपने तीन पुत्रों व पौत्रों का विवाह, बाल विधवाओं से करके अपनी बहु बनाकर उनकी जीवन सुखी किया और मैंने स्वयं भी अपने एक विधुर पुत्र चिं. दिनेश का विवाह एक विधवा जिसकी गोद में 3-9 वर्ष की बच्ची भी थी। उससे विवाह करके लाया और पुण्य का भागी बना। परन्तु महर्षि ने अपने सत्यार्थ प्रकाश में विधवा विवाह को स्वीकृति नहीं दी है और नियोग को माना है। पर उन्होंने पूना के बाहरवें प्रवचन में पूर्णत: स्त्रियों को भी पुनर्विवाह की स्वीकृति दी है जिसको पढ़कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। पन्द्रह प्रवचन इसी भांति है-

प्रथम प्रवचन में महर्षि ने ''ओ३म्'' को ईश्वर का सर्वोत्कृष्ट नाम बताया है जिसमें ईश्वर के सभी गुणों का समावेश है। दूसरे में श्री कृष्ण को भद्र व आप्त पुरूष बताया है और हिरण्यगर्भ को ज्योति स्वरूप परमात्मा का नाम बताया है। इसी में उपासना का लाभ बताते हुए उपासना द्वारा आत्मा में सुख की अनुभूति होती है, ऐसा लिखा है। तीसरे प्रवचन में धर्म और अधर्म की विवेचना की है और मनु महाराज के धर्म के दस लक्षणों को बताते हुए, इसमें अहिंसा को जोड़कर धर्म के ग्यारह लक्षण बताएं हैं। प्राचीन काल में नारियां पढ़ती थी और विदूषी हुआ करती थी। गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, कात्यावयनी आदि के नाम दिये हैं। चतुर्थ प्रवचन में ईश्वर प्राप्ति का मार्ग, मूर्ति पूजा न बतलाकर ज्ञान, कर्म और उपासना को बताया है। पूजा का अर्थ धूप देना, भोग लगाना नहीं, पर सत्कार व सम्मान करना बताया है। मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा करना अशास्त्रीय बताया है। हिन्दू नाम, मुसलमानों का रखा हुआ है। इसका मतलब काला, काफिर, चोर आदि होता है, ऐसा बताया है। पांचवें प्रवचन में संस्कृत भाषा सब भाषाओं की जननी है। वेद सब सत्य विद्याओं की पुस्तक है। इनमें विमान विद्या तथा अस्त्र विद्या आदि सभी विद्याएं हैं। ब्रह्मा के चार मुख थे, ऐसा कहा जाता है परन्तु चार मुख न होकर उनको चारों वेद कण्ठस्थ थे, इसलिए ब्रह्मा को चतुर्मुखी कहा जाता है।

स्वामी जी ने षष्ठ प्रवचन में बताया है कि मनुष्य का सच्चा आभूषण सत्य बोलना है। ईश्वर, मनुष्यों को कर्मफल, दु:ख व सुख के रूप में, पूर्व जन्म में किए कर्मों के अनुसार देता है। पशु-पक्षी केवल भोग योनि हैं और मनुष्य भोग योनि के साथ-साथ कर्म योनि भी है। इसे किए हुए कर्मों का फल ईश्वर देता है। गरूड़ादि पुराणों का खण्डन किया है। फलित ज्योतिष, देश में महाभारत के बाद आई है। महाभारत तक जन्म पत्रिकाओं का कोई वर्णन नहीं मिलता तथा चौरासी लाख योनियां गप्प हैं। योनियों की संख्या केवल ईश्वर ही जानता है। योनियां बताना मनुष्य के अधिकार से बाहर की चीज़ हैं। सप्तम प्रवचन में महर्षि ने बताया कि हवन करने से वायु शुद्ध होती है। ब्राह्मणों ने वेदों को कण्ठस्थ करके वेदों की रक्षा की। गाय आदि पशुधन के ह्रास से दूध-घृत की कमी होने से राष्ट्र कमज़ोर होता है। यज्ञों में पशुओं को मारकर डालना वेद विरुद्ध है आदि विषयों पर प्रकाश डाला है। अष्टम प्रवचन में महर्षि ने कहा कि हमें ग्रन्थों की प्राचीनता का ध्यान न रख कर सत्य ग्रन्थों को ही मानना चाहिए। उन्होंने मनु महाराज की मनुस्मृति में जो स्वार्थी लोगों ने प्रक्षेप श्लोक घुसा दिए हैं उनके लिए बहुत रोष प्रकट किया है। महर्षि की विन्रमता इसी से प्रकट होती है कि उन्होंने कहा कि मैं सर्वज्ञ नहीं हूं, मुझ से भी भूल हो सकती है, सो जो भी मेरी भूल को बतायेगा उसको मैं स्वीकार करूंगा और ठीक करने का प्रयत्न करूंगा। स्वामी जी ने ''आर्य'' नाम को बहुत श्रेष्ठ बतलाया और हिन्दू नाम का विरोध किया। स्वामी जी ने कहा, ''हम लोग गुण भ्रष्ट हुए सो हुए, परन्तु नाम भ्रष्ट तो हमें नहीं होना चाहिए। नवम प्रवचन में ऋषि ने बताया कि आर्यों को युद्ध विद्या अच्छी आती थी। इतिहास में इसके प्रमाण मिलते हैं। दूसरी बात यह कही कि हमें अंग्रेजों के गुणों को भी अपनाना चाहिए।''

दशम प्रवचन में स्वामी जी ने बताया कि राजा शान्तनु से देश की स्थिति बिगड़नी आरम्भ हुई और महाभारत युद्ध की समाप्ति के बाद से देश की हालत बिगड़ती ही जा रही है। स्वामी जी ने यह भी बताया कि तैंतीस कोटि देवताओं का अर्थ तैतीस करोड़ नहीं बल्कि तैतीस प्रकार के देवता होते हैं। कोटि को करोड़ मानना भूल है। लोगों की यह धारणा है कि विष्णु, महादेव, इन्द्र ये सब देवता अमर हैं। परन्तु स्वामी जी का कहना है कि जो जन्म लेगा वह अवश्य ही मरेगा, इसलिए अमर कोई भी नहीं है। स्वामी जी ने एक व्याख्यान में पाणिनि ऋषि की बड़ी प्रशंसा की और उनके द्वारा लिखी पांच पुस्तकें 1. शिक्षा 2. उणादि गुण 3. धातु पाठ 4. प्रातिपदिकगण 5. अष्टाध्यायी का वर्णन भी किया। लोगों की यह धारणा कि अस्त्र-शस्त्र मन्त्रों के उच्चारण से चलते थे, यह मूल हैं। क्षत्रियों को धनुर्वेद सिखाने के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। उन्होंने यह भी बताया कि लोगों का कहना है छ: दर्शनों में परस्पर विरोध है सो इनमें विरोध नहीं है बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं। स्वामी जी ने बताया कि पतंजलि मुनि ने मुक्ति प्राप्ति की जो युक्तियां बताते हुए और परमेश्वर में चित्त लगाने की शिक्षा देते हुए यह कहीं नहीं बताया कि मूर्ति पूजा भी कोई साधन है, इसलिए उपासना के वर्णन में कहीं भी मर्ति पूजा का सहारा नहीं मिलता है। उन्होंने यह भी बताया कि पराशर तथा आश्वलायन गृह्यसूत्रों में कहीं भी मूर्ति पूजा का नाम तक नहीं। कल्पसूत्रों में भी मूर्ति पूजा का कहीं वर्णन नहीं। घास का तिनका तोड़ने में भी कुछ देर लगती है पर धर्म के टूटने में कोई देर नहीं लगती। चोटी में गांठ न लगाई तो धर्म गया। खाने-पीने के बखेड़े को धर्म मानने लगे जिसने वीरों को कायर बना दिया।

द्वादश प्रवचन में पुनर्विवाह का समर्थन किया है। कहा है ईश्वर के लिए स्त्री-पुरुष समान हैं। जब पुरुष को पुनर्विवाह करने की आज्ञा है तो स्त्रियों को दूसरा विवाह करने से क्यों रोका जावे। इसने नारी जाति को शिक्षा देने का समर्थन किया है। भ्रूण हत्या को महापाप बताया है। अन्ध परम्परा का विरोध किया है। अवैदिक परम्पराओं का विरोध किया है। विदेशी भाषाएं सीखने का समर्थन किया है। महर्षि ने लिखा है कि जहां नीच और क्षुद्र लोग देश को चलाने में परामर्श देने लग जावे तो देश ज़रूर ही अवनति को प्राप्त होगा। जहां शकुनि जैसे संकीर्ण हृदय और क्षुद्र मनस्क जन की सम्मति से राज्य चलने लगे, कणिक शास्त्री धर्माधर्म का निर्णय करने लगे। वहां यदि घर में फूट उत्पन्न होकर घर वालों का विनाश हो गया हो, तो आश्चर्य ही क्या है ?

(नोट- यह बात हमारे देश और आर्य समाज की शीर्ष संस्थाओं में घट रही है, वर्तमान में)

स्वामी जी ने मार्टिन लूथर के सुधारवादी विचारों की प्रशंसा की। यादवों के विनाश का कारण प्रमाण, विषयासक्ति, मदपान और फूट बतलाया। आदि शंकराचार्य ने वेद मत का प्रचार किया, पाखण्ड मतों खण्डन किया, लिखा है। त्रयोदश प्रवचन में महर्षि कहते हैं कि वेदों में कहीं पर भी मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा का विधान नहीं है। मूर्ति पूजा जैनियों से चली है और पुराणों में इसका वर्णन है। मूर्ति पूजा निन्दनीय है और यह मात्र व्यवसायिक बन गई है। आर्यावर्त्त का गायत्री मन्त्र को उपासना का सर्वश्रेष्ठ साधन बताया। ईश्वर और जीव का सम्बन्ध कैसे है बताया। परमात्मा और जीवात्मा को एक मानना ठीक नहीं। उनका सम्बन्ध व्यापक और व्याप्य, सेव्य और सेवक का होता है। पंचदश प्रवचन में स्वामी जी ने जोशी अमर लाल जिसने स्वामी जो को पढ़ने के समय जो उपकार किया, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट की। अपने ज्ञान को सब लोगों तक बांटने की कामना की। मेरे जैसे अनेक उपदेशकों से ही धर्मोन्नति सम्भव है बताया। अपनी हार्दिक इच्छा ईश्वर से इस प्रकार प्रार्थना करते हुए प्रकट की कि हे ईश्वर! सर्वत्र आर्य समाजें कायम और उन्हीं के अनुसार लोगों का आचरण होकर देश की उन्नति हो। मुझे पूरी आशा है कि आप सब सज्जनों की सहायता से मेरी यह इच्छा पूर्ण होगी।

आलस्य :- मनुष्य का दुश्मन

-ले० श्री जगदीश चन्द्र शर्मा जालन्धर

इन्सान बाहर रहने वाले अपने दुश्मनों से सावधान भी रहता है और उनसे बचने के प्रयत्न भी करता है। पर उसके असली दुश्मन उसके अन्दर ही विद्यमान रहते हैं और उसके विकास को रोकते रहते हैं। इन्हीं में से एक बड़ा शत्रु आलस्य है, जो कि छोटी आयु से ही बच्चो में घर कर लेता है और दिन व दिन बढ़ता जाता है।

जब हम छात्रावस्था में पढ़ते थे तो परीक्षा में कम नम्बर आने पर हमेशा सोचते थे कि नए वर्ष में शुरू से ही पूरी मेहनत करेंगे पर नए वर्ष में फिर टालमटोल शुरू हो जाती थी और यह आलस्य रूपी दानव नए-नए बहाने बना कर हमारे परिश्रम करने में रुकावट डालता रहता था। मेहनती और आलसी व्यक्ति सोचता है कि अब काम कर लूं बाद में आराम कर लूँगा। उधर आलसी सोचता है कि अब आराम कर लूं, बाद में काम भी कर लूँगा। पर दुर्भाग्यवश उसका बाद कभी भी नहीं आता।

कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होता जो अच्छे-अच्छे काम न करना चाहता हो पर मन आलस्य के वश होकर तरह-तरह के बहाने बनाता रहता है। हर कोई जानता है कि सैर व व्यायाम करने से स्वास्थ्य ठीक रहेगा व हम बीमारियों से बचे रहेंगें। इसी तरह हर कोई ईश्वर की उपासना करना चाहता है व दूसरे यज्ञ, दान आदि शुभ कर्म करना चाहता है यह आलस्य वश आजकल करता-करता जीवन का बहू-मूल्य समय गंवा देता है, जो लोग बड़े अधिकारी, व्यापारी व विद्वान बनने की योग्यता रखते थे, वे इस आलस्य रूपी दैत्य के कारण साधारण जीवन जीकर रह गये है।

स्कूल में ही बच्चों को सिखाया जाता है कि मेहनत ही सफलता की कुंजी है। इसके बावजूद हर व्यक्ति मन के नित नए बहानों के कारण परिश्रम करने से वंचित रह जाता है। जब हम किसी काम को कल पर टाल देते है तो अगले दिन उस काम को करना और कठिन हो जाता है क्योंकि मन स्वाभवत: उस काम से डरने लगता है।

यह भी हो सकता है कि अगले दिन और नए काम आ जाए और वह काम हम निपटा ही न पाएं। छोड़े हुए काम हमारे दिलो-दिमाग पर बोझ डालते रहते है और हमारी सुख शान्ति के खराब करते रहते है।

इसलिए हम सब को अपने जीवन के क्रियाकलापों पर विचार करना चाहिए और हमारे मन में स्थित इस आलस्य व प्रमाद रूपी शत्रु के बारे में चिन्तन कर इसका नाश करने का यत्न करना चाहिए। आलस्य को दूर करने के लिए मनोविज्ञानिकों द्वारा जो सुझाव दिए जाते है उन में से निम्नलिखित बहुत उपयोगी है।

1. जो काम हमें कठिन लगे, उन्हें पहले करना चाहिए। उन्हें करने से हमारा आत्मविश्वास बढ़ेगा और आसान काम तो हम निपटा ही लेंगे।

2. सभी करने वाले कार्यों की लिस्ट बना ली जाए और उसी दिन में कई बार देखा जाए। इससे काम करने की इच्छा भी जागेगी और जरूरी काम हम भुला भी नहीं पाएंगे।

3. जो काम आज/अभी किया जा सकता है उसे कल के लिए न टालें।

परमात्मा करे कि हम सब आलस्य रूपी शत्रु को त्याग कर कर्त्तव्य परायणता को मित्र बना कर आपना जीवन सार्थक करें।

चुनाव सम्पन्न

आर्यसमाज राजेन्द्रनगर, नई दिल्ली-60, की साधारण सभा का वार्षिक अधिवेशन दिनांक 25 मई को साप्ताहिक सत्संग के पश्चात् सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सन् 2014-2015 के लिए नई कार्यकारिणी गठन किया गया। प्रधान पद के लिए श्री अशोक सहगल जी सर्व सम्पति से निर्वाचित किये गये। प्रमुख पदाधिकारियों के नाम एवं पद निम्नलिखित हैं 1. श्री अशोक सहगल प्रधान 2. श्री सुरेश चुग उप प्रधान 3. श्री सतीश चन्द्र मेहता मन्त्री 4. श्री नरेन्द्र वलेचा वरिष्ठ कार्यकारी मन्त्री 5. श्री सतीश कुमार कोषाध्यक्ष

-मन्त्री आर्य समाज

पृष्ठ 4 का शेष-मनुष्य को कर्त्तव्य.....

अनेक मन्त्रों में उल्लेख है कि परमात्मा की प्राप्ति जागने वाले करते हैं। भगवत् प्राप्ति के जितने उपाय हैं उनमें सावधानी या सचेष्टता मुख्य है-

तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम्।।

ऋ० १.२२.२१

बुद्धिमान्-पुरुषार्थी-धार्मिक-विद्वान् जन द्युलोक में फैले हुए नेत्रों के समान सर्वव्यापक परमात्मा के आनन्द-मोक्ष रूपी पद को सदा देखते हैं। सूर्य के प्रकाश में ब्रह्माण्ड के ठीक-ठीक दर्शन होते हैं ; वैसे ही वे परमेश्वर का दर्शन कर लेते हैं। एक अन्य मन्त्र में एक विशेष बात बताई है-

तद् विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत् परमंपदम्।।

ऋ० १.२२.२१

उस सर्वव्यापक प्रभु के मोक्ष पद को जागने वाले ही प्राप्त करते हैं। मन्त्र में संकेत है कि आत्मकल्याण भी जागरूक व्यक्ति ही कर सकते हैं। उपनिषद् की एक सूक्ति बड़ी सारगर्भित है। उसमें इसी विषय का प्रतिपादन किया गया है। मनुष्य मात्र को सावधान किया गया है कि हे मनुष्यों उठो, जागो, सावधान हो जाओ और श्रेष्ठ पुरूषों के पास जाकर आत्मज्ञान लो, परमेश्वर को जान लो-

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।

कठोप० १.२२.२१

मानवजीवन के तीन आयाम हैं; ज्ञान-कर्म-उपासना। सर्वप्रथम विद्याध्ययन कर ज्ञानार्जन करना, विद्यापारङ्गत होकर कर्मक्षेत्र में उतरना और कर्म में दक्षता प्राप्त करके उपासना का अधिकार प्राप्त करना प्रत्येक का कर्त्तव्य है। अवान्तर कर्त्तव्य इन्हीं के अन्तर्गत समाहित हो जाते हैं। ज्ञान या विद्या जीवन का मूलाधार है। विद्वान् को देवता कहा गया है और देवता सदा जागरणशील होते हैं। विद्या की प्राप्ति एक साधना है। इस साधना को सम्पन्न करने के लिये विद्यार्थी को अपनी पूर्ण शक्ति लगानी होती है। अपनी सभी चित्तवृत्तियों को केन्द्रित करके शक्तिस्त्रोत को नियन्त्रित करना होता है अर्थात् शक्ति व्यर्थ के कार्यों में नष्ट न हो जाय केवल ज्ञान की खोज के लिये उसका उपयोग किया जाय। आज का छात्र संघ स्वयं छात्र के लिये घातक है। इसके माध्यम से बहुत-सी ऐसी योजनाएँ बनती हैं जो छात्र की प्रतिभा को कुण्ठित कर देती हैं। शक्ति तो सीमित है यदि उसे इधर-उधर के कामों में लगाया गया तो अध्ययन से विमुख होना स्वाभाविक है। यही छात्र की विद्या के प्रति उपेक्षा है। इस थोड़ी-सी असावधानी के कारण सारा जीवन दिशाहीन हो जाता है जो राष्ट्रीय स्तर पर बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। अत: छात्र को याद रखना चाहिये-'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत।'

महर्षि दयानन्द मठ ढन्न मोहल्ला में वेद प्रचार सप्ताह

महर्षि दयानन्द मठ (वेद मन्दिर) ढन्न मोहल्ला जालन्धर में वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन 14 जुलाई 2014 से 20 जुलाई 2014 तक किया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य जगत के उच्चकोटि के प्रखर, ओजस्वी, विद्वान्, आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय के प्रवचन तथा वैदिक भजनोपदेशक श्री राजेश अमर प्रेमी के मधुर भजन होंगे। प्रात:कालीन सत्र में हवन यज्ञ, भजन और प्रवचन तथा सायंकालीन सत्र में भजन तथा वेद कथा होगी। सभी आर्य महानुभावों से प्रार्थना है कि इस अवसर पर अपने परिवार और इष्ट मित्रों सहित पधार कर धर्म लाभ प्राप्त करें।

-कुन्दन लाल अग्रवाल प्रधान प्रबन्धक समिति

आर्य समाज अड्डा होशियारपुर में वेद प्रचार सप्ताह

आर्य समाज अड्डा होशियारपुर जालन्धर का वेद प्रचार सप्ताह का आयोजन 4 अगस्त 2014 से 10 अगस्त 2014 तक किया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के महोपदेशक श्री विजय कुमार जी शास्त्री वेद कथा करेंगे तथा श्री राजेश प्रेमी जी के मधुर भजन होंगे। सभी आर्य बन्धु अपने परिवार तथा इष्ट मित्रों सहित दोनों समय उपस्थित होकर पुण्यार्जित करें।

-विनोद सेठ प्रधान आर्य समाज

आध्यात्म चिन्तन

ऋतस्य पंथा न तरति दुष्कृत:

-ले० पं० उम्मेद सिंह विशारद वैदिक प्रचारक उत्तराखण्ड

ऋग्वेद यह कहता है कि सत्पथगामी के लिये सत्य बोलना और सत्कर्म करना कितना अनिवार्य है। **नास्ति सत्यात् सपरोधर्म:** अर्थात् सत्य से उत्तम कोई धर्म नहीं है। मनु महाराज जी ने उचित ही कहा है, हमारे किसी भी कथन की सार्थकता तब है, जब हमारे कर्म हमारी वाणी के अनुरूप हो। ईश्वर भक्त को भक्ति के साथ सत्कर्म करने वाला होना चाहिए, तभी ईश्वर भक्ति कहलायेगी। प्रभु का निरन्तर ध्यान से स्वच्छ हृदय होने लगता है और मनुष्य जगत में सर्वत्र परमात्मा का आभास करने लगता है।

जब कोई मन, वचन, कर्म से एक रूप हो जाता है तो वह देवत्व की ओर बढ़ने लगता है, तब वह मानव कल्याण की बात करने लगता है। जब हम **मनसा वाचा कर्मणा:** एक रूप होंगे तो हमारी आत्मा की सर्व भूतहित के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर बैठेगी। **सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:।** यह जगत तपोभूमि भी है और कर्म भूमि भी है। वेदों में इसीलिये प्रार्थना की गई है कि मेरी प्रवृत्ति मधुमय हो, मेरी निवृत्ति भी मधुमय हो, इसका तात्पर्य यही है कि यदि सत्यं शिवं सुन्दरम् की भावना हमारे मन में हो और मनसा, वाचा, कर्मणा से एक रूप होने से सफलता मिल सकती है।

मानव जीवन के अन्त:करण की वृत्ति तीन कोटि की होती है, सात्विक, राजसी और तामसी। सात्विकी भावना ईश्वरपरक आत्मा की कल्याणकारी है। राजसी जगत में विषय भोगों की भावना है। हिंसापरक अज्ञानता से परिपूर्ण तामसी भावना है और सात्विक भावना जगत-जगत के बन्धनों से छुड़ाती है। वहाँ अन्य दोनों दु:खों में बांधने वाली है। स्वभाव के अनुसार भावना, भावनानुसार इच्छा, इच्छानुसार कर्म, कर्मानुसार स्वभाव के आधार पर पुन: भावना निर्मित होती है और बुरी भावना कर्म विनष्ट होकर ही अन्त:करण पवित्र करके परमात्मा में जोड़ती है। यह सत्य है कि कुसंग का प्रभाव बिना कोई प्रयास किये तुरन्त ही पड़ता है और सत्य संग का प्रभाव देर में पड़ता है। चित्त की चंचलता, हृदय की मलिनता, अकर्मण्यता, आलस्य का प्रतिकूल स्वभाव के कारण सत्पुरूषों का व्यक्तित्व देर से प्रभावित होता है।

जिस दिन ईश्वर, संसार, आत्मा और मानव शरीर के संबंधों की गरिमा का ज्ञान होगा, उस दिन हमें जीवन की वास्तविकता का ज्ञान हो जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में सुख शान्ति व समृद्धि चाहता है। परन्तु बदले में समाज व राष्ट्र को क्या देता है, विचारणीय है। ईश्वर, संसार, आत्मा और मानव शरीर का आपस में अन्योन्याश्रित संबंध है। एक के बिना दूसरे की गणना नहीं की जा सकती है। इसलिए हमें ईश्वर, आत्मा, शरीर व समाज के साथ सामन्जस्य बनाना पड़ता है।

प्राय: हमारी सारी उम्र खाने-पीने व परिवार के पालने में ही निकल जाती है और जब आत्म बोध होता है तब यह शरीर व दिलोदिमाग साथ नहीं दे पाता है। तब बहुत देर हो चुकी होती है। इसके लिये सतत प्रभु स्मरण सेवा भाव संयम सदाचार आदि ऐसे सद्गुण हैं, जो हमें आत्मबोध के मार्ग पर ले जाते हैं। सद्गुण प्रत्येक स्थिति में मनुष्य का कल्याण करते हैं।

माता-पिता का बच्चों का पालन-पोषण, लाड-प्यार प्राकृतिक है, जो प्रकृति कराती है, किन्तु मनुष्य अहंकार वश अपने को प्रेम करने वाला समझता है। यह प्रेम सामाजिक है। इसीलिये तो अपने-अपने उद्देश्य की पूर्ति के बाद यह प्रेम बिखर जाता है। किन्तु जो मनुष्य अपने दायित्वों को पूरा करते हुए परमात्मा से प्रेम करता है, यह अलौकिक एवं अमृत सुख प्राप्त करने वाला प्रेम है। यह प्रेम, धन, यौवन, स्वार्थ, ज्ञान, तप, इच्छा कामना से परे है।

मनुष्य का जीवन सूर्य की तरह गतिमान है। सूर्योदय उसका जन्म है, दोपहर, जवानी और सांझ वृद्धावस्था है और सभी में जीवन की कहानी के समापन का प्रतीक है, जीवन मृत्यु दोनों सत्य हैं। यह जीवन का परम सत्य है। जन्म से मृत्यु तक सुख अस्थायी नहीं रहता। किन्तु एक बाद स्मरण रखनी चाहिए कि वृद्धावस्था तो जीवन का सुनहरा अध्याय है। जिसने जीवन जीना सीखा है, उसके लिए वृद्धावस्था में अपने कल्याण के लिये जीता है। वृद्धावस्था जीवन का महत्वपूर्ण पड़ाव है। कहा भी गया है, जवानी में सुख से जियो और वृद्धावस्था में शांति से जियो। मनुष्य जीवन भर शांति की खोज में लगा रहता है, उसका परिणाम वृद्धावस्था में प्राप्त होता है। ज्ञान भक्ति और कर्म के विविध मार्ग यदि न बने तो शान्ति प्राप्ति के लिये एक मार्ग परमात्मा की शरण में जाने का मार्ग भी है। यह मार्ग अहम् भाव को तिरोहित करने का है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने स्वयं जब ईश्वर को प्राप्त किया अर्थात् अनुभूति प्राप्त की तो वह ऋषि कहलाये। तभी तो उन्होंने संसार के प्रपन्चों से हटाने की शिक्षा कदम-कदम पर दी है। उन्होने मनुष्य को ईश्वर की ओर मोड़ने के लिये एक अद्भुत ज्ञानवर्धक कल्याणकारी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश लिखा और उसमें 11 सम्मुलास केवल मनुष्यपन से देवत्व की ओर ले जाने के लिये लिखे हैं। आश्चर्य होता है कि, युगों बाद एक देवता ने ईश्वरीय परम्परा को स्थापित करने के लिये कितने कष्ट सहे। सम्पूर्ण संसार एक तरफ और ईश्वर भक्त ऋषि एक तरफ थे। उन्होंने कहा जो हमें दीखता है, वह असत्य है और जो नहीं दिखता वह सत्य है। जो चलायमान है व अस्थिर है, परिवर्तनशील है, वह दिखता ही भर है, वास्तव में वह अपरिवर्तनशील तत्व के ही आधार पर टिका हुआ है। अचल स्थिर अपरिवर्तनशील तत्व न हो तो परिवर्तन हो ही नहीं सकता है। हर गति अगतिशीलता के कारण टिकी हुई है। इसलिए दृश्य परिवर्तनशील और अदृश्य परिवर्तनशील है। जैसे आत्मा अदृश्य है तो शरीर दृश्य है, इसी प्रकार संसार के प्रत्येक पदार्थ दृश्य परिवर्तनशील हैं और उनका आधार परमात्मा के गुण अपरिवर्तनशील हैं।

गुरुकुल खेड़ा खुर्द में प्रवेश प्रारम्भ

दिल्ली प्रदेश की प्रसिद्ध संस्था गुरूकुल खेड़ा खुर्द दिल्ली में कक्षा 5वीं, छठी व सातवीं और 8वीं में प्रवेश प्रारम्भ हो गया है। इच्छुक अभिभावक सम्पर्क करें। -**आचार्य सुधांशु मोबाइल-9350533942**

अध्यापक की आवश्यकता

श्रीमदयानन्द आर्ष गुरूकुल खेड़ा खुर्द दिल्ली में कक्षा छठी से लेकर 12वीं तक अंग्रेजी, विज्ञान एवं संस्कृत व्याकरण पढ़ाने वाले अध्यापकों की आवश्यकता है। इच्छुक व्यक्ति सम्पर्क करें।

आचार्य सुधांशु, मोबाइल-09350538942

चुनाव सम्पन्न

आर्य समाज, आर्य समाज चौक पटियाला का चुनाव दिनांक 15 जून 2014 को आर्य समाज के प्रांगण में श्री सोम प्रकाश जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ जिसमें सर्वसम्मति से निम्नलिखित कार्यकारिणी का चुनाव हुआ। श्री राज कुमार सिंगला प्रधान, श्री वीरेन्द्र सिंगला उप प्रधान, श्री शैलेन्द्र मैहरा उप प्रधान, कर्नल (सेवानिवृत्त) आनन्द मोहन सेठी उपप्रधान, श्री वेद प्रकाश तुली मंत्री, श्री अरुण कुमार उप मंत्री, श्री जितेन्द्र शर्मा कोषाध्यक्ष, श्री विजेन्द्र शास्त्री प्रचार मंत्री, पुस्तकालयाध्यक्ष श्री गुलाब सिंह, सह पुस्तकालयाध्यक्ष श्री हर्ष वर्धन, स्टोर प्रभारी श्री शिवदास, श्री भूपेन्द्र राय और श्री यशपाल जुनेजा सदस्य बने। -**वेद प्रकाश तुली मंत्री**

वेदवाणी

पृथिवी–धारक

सत्यं बृहदृतमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु।।
-अथर्व० १२।१।१

विनय–हे प्रभो ! जिस भूमि पर हम रहते हैं वह भूमि हमें उन्नत करे, हमें विशाल बनाए हम इसे धारण करने का पूरा यत्न कर रहे हैं। जब कभी हम मोहवश यह समझ लेते है कि कूटनीति अर्थात् झूठ, कपट, चालाकी आदि से अपने देश, राष्ट्र व मातृभूमि की धारणा होगी तब हम भूले होते हैं। पृथिवी को धारण करने वाले जो आवश्यक गुण है उन में तो सबसे पहला सत्य है। वह महान् सत्य, जिससे विश्वब्रह्मण्ड स्थिर है, हमारी भूमि को भी वही धारण किये हुए है और केवल सत्य का ज्ञान ही नहीं, किन्तु उसका आचरण राष्ट्र को स्थिर रखता है। हमें कठोरता के साथ, तेजस्विता के साथ, पूरा–पूरा सत्याचरण करना चाहिए। हमसे जितना सत्य होगा, जितने उग्र सत्यचर्या होगी, जितना हम दृढ़ संकल्प होकर ग्रहण किये व्रतों को निबाहने वाले होंगे, जितने हम राष्ट्र के लिए कष्ट सह सकेंगे जितना हमें अनुभूत ज्ञान होगा और जितना हम निःस्वार्थ होकर परोपकार–वृत्ति वाले होंगे ; उतना ही यह हमारा देश अचलतया स्थित रहेगा। भूमि को कोई राजा, शासन या
प्रजा नहीं धारण करते, किन्तु वहाँ के वासियों में स्थित ये छह गुण ही एकमात्र भूमि को धारण करने वाले होते हैं। यह जानकर इन गुणों को हम अपने में लाने का पूरा यत्न करते हुए ही यह प्रार्थना करते हैं कि हमारी प्यारी मातृभूमि हमें विस्तृत और विशाल बनाये। हम उन गुणों की साधना द्वारा अपनी मातृभूमि को धारण करें और यह भूमि हमारे भूत और भव्य की रक्षा करने वाली होकर हमें उन्नत करे। हम अपने भूत के आधार पर ही भविष्य में उन्नत हो सकते हैं और जितना ही हम अपने राष्ट्र के साथ एक होंगे, तादात्म्य करेंगे उतना दूर तक हम अपने राष्ट्र के भूत में प्रविष्ट होंगे और उतना ही अपने भविष्य को उज्जवल और महान् बना सकेंगे। इस प्रकार मातृभूमि की हमारी उपासना हमें सुविशाल कर दें। राष्ट्र का व्यक्ति मातृभूमि के जीवन और मरण के साथ ही जीता या मरता है। मातृ भूमि की अनन्यभाव से उपासना मनुष्य को कितनी विस्तृत आयु (जीवन) प्रदान कर देती है। तब मनुष्य क्षुद्र बातों से कितना ऊँचा हो जाता है ! आओ, हम आज से उन सत्य आदि महान् [बृहत्] गुणों को अपने में धारण करते हुए अपनी मातृभूमि की सच्ची पूजा किया करें जिससे यह भगवती मातृभूमि हमारे भूत के दृढ़ चट्टान पर हमारे उज्ज्वल भव्य की रचना को सुरक्षित करती हुई हमारे लिए उतने विशाल क्षेत्र को खोल दे–उस भूत और भव्य को व्याप्त कर लेने वाले विस्तृत लोक को हमारा बना दे।

–साभार वैदिक विनय प्रस्तुति–रणजीत आर्य

ज्योति नंदा आठवीं बार प्रधान नियुक्त

स्त्री आर्य समाज गुरदासपुर का वार्षिक चुनाव श्रीमती प्रेम अम्बा की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। मुख्य अतिथि श्रीमती शिक्षा शर्मा जी उपस्थित थे। जिसमें सर्वसम्मति से श्रीमती ज्योति नंदा को प्रधान चुना गया। इसके बाद सर्वसम्मति से प्रेम अम्बा को उपप्रधान, महामंत्राणी श्रीमती सुदर्शन शर्मा और कोषाध्यक्ष राधा गंडोत्रा को चुना गया। कार्यकारिणी में मोनिका गुप्ता, सुमन, मिनाक्षी, शशी, सविता रेणु, दीक्षा, कविता, मंजू, मिला, निर्मल सुलभा, रीटा रंजना, अनीता, सुषमा, कंचन को चुना गया। अंत में श्री राम निवास शास्त्री जी ने शांतिपाठ के साथ सभी का धन्यवाद किया। बाद में सभी बहिनों ने मिलकर चाय पी।

–मन्त्राणी सुदर्शन शर्मा

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।